पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता

डॉ. भारत सिंह,

प्राचार्य, सरदार भगत सिंह संघटक राजकीय महाविद्यालय, ढका खुर्द, पुवायां, शाहजहाँपुर

शोध सारांश

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शैक्षिक विचार न केवल भारत अपितु विश्व के लिए अनुकरणीय हैं। उपाध्याय जी ने शिक्षा की व्यवस्था किसे करनी चाहिए– राज्य या समाज या निजी व्यक्ति तथा शिक्षा की भाषा क्या होनी चाहिए? जैसे प्रश्नों को जोर से उठाया है और उसका समाधान खोजने की कोशिश की है। उनका मानना है कि शिक्षा द्वारा ही सामज की रचना होती है। उन्होंने निःशुल्क शिक्षा देने की बात उठाई है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय वजी ने अध्यापन जैसे क्षेत्र की परम्परागत व्याख्या से हटकर इसकी व्यापकता को भी समझाया है। उन्होंने शिक्षा के पाठयक्रम को व्यापक बनाने पर जोर दिया है जैसे– कृषि, बागवानी, मत्स्यपालन से लेकर कुटीर उद्योग, कौशल विकास, पाठ्येत्तर क्रिया–कलापों तथा लोक शिक्षा।

मुख्य शब्द– *भाषा, मातृभाषा, पाठ्यक्रम, शैक्षणिक विचार, शैक्षणिक व्यवस्था, परम्परागत शिक्षा, निःशुल्क शिक्षा, राज्य, सरकारी शिक्षा, गैर–सरकारी अध्यापन, राष्ट्र भाषा।*

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का मानना था कि एकात्मकता भारतीय संस्कृति का केन्द्रीय विचार है। उनका कहना थाा कि– हमारी देश भक्ति तो अपने राष्ट्र के सम्पूर्ण जनमानस के प्रति एक ममत्व की भावना के कारण है। जो एकात्मकता का ही परिणाम है। व्यक्ति की आत्मा के समान ही राष्ट्र की भी आत्मा होती है। इसी कारण राष्ट्र में एकात्मकता होती है। दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र की आत्मा के अनुसार ही शिक्षा व्यवस्था के पक्षधर थे। उनका मानना था कि प्रत्येक राष्ट्र की अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परम्परा होती है। इसी परम्परा के अनुरूप ही उसे अपनी शिक्षा व्यवस्था को समझना चाहिए। किसी अन्य देश की शिक्षा व्यवस्था की नकल करना विनाशकारी हो सकता है।

दीनदयाल उपाध्याय जी मानते थे कि मानव की सामाजिक यात्रा शिक्षा से ही मार्गदर्शन प्राप्त करती है। वे कहते थे कि शिक्षा ही व्यष्टि एवं समष्टि में सामंजस्य पूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का कार्य करती है। उनका कहना था कि शिक्षा ही समाज की जननी होती है। शिक्षा से ही गतिशील समाज की रचना होती है। इससे मनुष्य अपने पूर्व के अनुभवों और संस्कारों को सींचते हुए अपना विकास करता है। इसलिए शिक्षा न हो तो समाज का निर्माण ही नहीं हो सकता है।

दीनदयाल जी का मानना था कि बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था करना समाज एवं राष्ट्र का प्रमुख दायित्व है। शिक्षा से ही व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र का हित पूर्ण होता है और उसका विकास होता है अतः समाज का दायित्व है कि वह अपने विकास एवं हित के लिए शिक्षा की निःशुल्क व्यवस्था करे। दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार बच्चों को शिक्षा देना समाज के अपने हित में है। जन्मतः मानव पशुवत होता है। शिक्षा से वह समाज का मनुष्य बनता है। जो काम सामज के अपने हित में हो, उसके लिए शुल्क लिया जाये

तो यह उल्टी बात होगी। पेड़ लगाने और सींचने के लिए हम पेड़ के फलने पर हमें फल मिलेंगे ही। शिक्षा भी इसी प्रकार का विनियोजन है।

किसी भी राष्ट्र का अपनी राष्ट्रीय मूल्य, संस्कृति एवं लक्ष्य होते हैं और उसी के अनुरूप ही वहां शिक्षा का विकास होता है। हम वैदिक काल से ही भारत में शिक्षा और शैक्षणिक व्यवस्था का एक व्यवस्थित रूप देखते आ रहे हैं। विद्यारम्भ संस्कार से बच्चें को पहली बार अक्षर का ज्ञान कराया जाता था। विद्यारम्भ परिवार नामक पाठशाला से होती थी। उपनयन संस्कार के बाद गुरूकुल में गुरू के समीप जाकर विभिन्न वेदों, दर्शन, चिकित्स, ज्योतिष एवं गणित आदि विषयों की शिक्षा ग्रहण की जाती थी। छात्र जब गुरूकुल शिक्षा पूरी कर लेते थे तो समावर्तन समारोह होता था। समावर्तन संस्कार के पश्चात् ही छात्रों को स्नातक कहा जाता था।

इस प्रकार से प्राचीन भारतीय समाज में शिक्षा की 'गुरूकुल पद्धति' प्रचलित थी। हमारे देश में शिक्षा के महत्व और उससे सामाजिक हितों की पूर्ति को ध्यान में रखते हुए समाज ने शिक्षा का व्यय स्वयं उठाया। यह तो औपनिवेशिक काल में अंग्रेजी शासन ने शिक्षा के खर्च को निजी वहन परी छोड़ दिया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शब्दों में 'गुरूकुलों में भोजन व रहने की व्यवस्था भी आश्रम से होती थी। केवल भिक्षा मांगने ब्रह्मचारी को समाज में जाना होता था। कोई भी गृहस्थ ब्रह्मचारी को खाली नहीं लौटाता था, अर्थात् समाज द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। हम अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करके वास्तव में उनके ऊपर कोई उपकार नहीं करते हैं। यह तो हमारे पूर्वजों का हम पर एक कर्ज है, जिसका भुगतान हमें करना होता है।'' पंडित दीनदयाल के शब्दों में, ''हमारे शास्त्रों के अनुसार यह ऋषि–ऋण है जिसे चुकाना प्रत्येक का कर्त्तव्य है। जब हम भावी सन्तति की शिक्षा की व्यवस्था करते हैं, वास्तव में हमारी उनके प्रति उपकार की भावना नहीं रहती, अपितु हमें जो कुछ धरोहर अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई है उसे आगे की पीढ़ी को सौंप कर उनके ऋण से उऋण होने की मनीशा रहती है।

आज भारत एक स्वतंत्र एवं लोक कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित हुआ है। शिक्षा को निःशुल्क उपलब्ध कराने का दायित्व जो समाज पर था, वह अब राज्य के ऊपर आ गया है। प्रजा को शिक्षा की उपेक्षा न करने देना, शिक्षा सम्बन्धी कार्यों में उनकी सहायता करना, प्रत्येक स्थान पर विद्वानों, गुरूओं का प्राचुर्य रखना, देश काल निमित्तों को शिक्षा के अनुकूल रखना, स्थान–स्थान पर शिक्षाश्रमों की व्यवस्था करना, सर्वथा उनके उत्साह को बढ़ाये रखना राज्य के परम्परागत कर्त्तव्य हैं। शिक्षा की पर्याप्त एवं उचित व्यवस्था नई पीढ़ियों के ज्ञान वृद्धि का कारण बनेगी। पूर्व संचित ज्ञान रूपी पूंजी को प्राप्त करके आने वाली नई पीढ़ियां अपने जीवन के कार्य क्षेत्र में सफलता अर्जित करेंगी।

पंडित दीनदयाल के शब्दों, ''शिक्षा की जितनी व्यापक और गहरी व्यवस्था होगी, समाज उतना ही अधिक पुष्ट हौर गम्भीर होगा। नई पीढ़ी के के जितने लोगों को और जितनी अधिक मात्रा में पिछली ज्ञान–निधि प्राप्त होगी, उसी पूंजी को लेकर वह जीवन के कार्य क्षेत्र में उतरेगी। यह भी स्वाभाविक है कि वह प्राप्त पूंजी में अपने प्रयत्न और अनुभव के आधार वृद्धि करें।''

यद्यपि दीनदयाल उपाध्याय राज्य को शिक्षा की व्यवस्था करने के लिए उत्तरदायी मानते थे लेकिन वे इस पक्ष में बिल्कुल भी नहीं थे कि शिक्षा का सरकारीकरण किया जाये। उनकी यह सोच थी कि शिक्षा का सरकारीकरण करने से स्वंतत्र रूप से शिक्षा का विकास नहीं होगा। सरकारें अनावश्यक रूप से शिक्षा व्यवस्था में हस्तक्षेप करती रहेंगी। वह यह भी नहीं चाहते थे

कि शिक्षा को निजी क्षेत्रों के हाथों में सौंपा जाये और शिक्षा संस्थायें प्रबंधकों या प्रबन्धन समिति की निजी सम्पत्ति बन कर रह जायें। वास्तव में दीनदयाल उपाध्याय जी शैक्षिक स्वायत्तता के हिमायती थे। शिक्षा का व्यय राज्य द्वारा होने के उपरान्त भी उसका सरकारीकरण नहीं होना चाहिए। प्रत्येक क्षेत्र में शिक्षा संस्थाओं का प्रबन्धन करने के लिए शिक्षकों तथा शिक्षाविदों के स्वायत्त निकाय होने चाहिए, सरकार के विभाग के रूप में उनका चलना ठीक नहीं है। सरकारी और गैर–सरकारी शिक्षा संस्थाओं का भेद समाप्त कर देना चाहिए। शिक्षा क्षेत्रों में वेतनक्रम व अन्य सुविधाएं ऐसी हो जिससे योग्य व्यक्ति शिक्षा क्षेत्र ममें आने से संकोच न करे। शिक्षा संस्थाओं को प्रबंधकों की निजी सम्पत्ति बनने देना उचित नहीं है।

दीनदयाल उपाध्याय ने 'अध्यापन' के परम्परागत विचारों को चुनौती दी है। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि अध्यापन का कार्य केवल अजर ज्ञान, पाठ्यक्रम एवं पुस्तकों के अध्ययन तक सीमित नहीं है। अपितु इसका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है केवल पुस्तकीय ज्ञान से शिक्षा का पूर्ण उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। अध्यापन के अनतर्गत वे सब क्रियाएं आती हैं जिनके द्वारा कोई भी व्यक्ति या व्यक्ति समूह अपने पास के ज्ञान को दूसरे को देने का चेतना पूर्वक प्रयास करता हो। यह प्रयास पाठशालाओं और विश्वविद्यालयों में ही नहीं, घर–घर में, खेत–खलिहान, कारखानों, दुकानों, कला भवनों खेल के मैदानों और मल्लशालाओं में भी चलता रहता है। प्राचीन काल में कथा और कीर्तन तथा आज के सोशल मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया तथा प्रिंट मीडिया इसी के अन्तर्गत आते हैं। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे समाज में समानता का निर्माण हो। समाज में भेदभाव न हो। दीनदयाल उपाध्याय शिक्षा की दोहरी व्यवस्था जिसमें 'पब्लिक स्कूल' तथा 'सरकारी स्कूल' होते हैं। यह दोहरी व्यवस्था समाज में असमानता पैदा करती है।

शिक्षा का माध्यम कौन सी भाषा हो? इसे लेकर पंडित दीनदयाल उपाध्यायय के विचार बिल्कुल स्पष्ट थे। दीनदयाल उपाध्याय के समय में तत्कालीन शिक्षा मंत्री निगुण सेन ने प्रस्ताव दिया था कि मातृभाषा के साथ–साथ हिन्दी या अंग्रेजी कोई एक भाषा शिक्षा का माध्यम रहे। दीनदयाल उपाध्याय ने इस द्विभाषा फॉर्मूला की आलोचना की थी। उन्होंनें कहा कि हिन्दी या अंग्रेजी में से स्वेच्छा से कोई एक भाषा पढ़ने की बात धोखा है। मातृभाषा पर विचार देते हुए उपाध्याय जी कहते हैं कि जो भाषा मैं प्रयोग कर रहे हूँ, वह मेरी नहीं मुझे किसी ने दी है। इसे मातृभाषा कहते हैं, क्योंकि वह सबसे पहले माँ से उसके बाद समाज से प्राप्त हुई है। हमें राष्ट्रीय स्वाभिमान की भावना को संपुष्ट रखने के लिए अंग्रेजी को हटाना होगा। इसलिए अंग्रेजी के गुण और लाभ की रट लगा लेने से कोई लाभ नहीं होने वाला है। हम अंग्रेजी शासन को जारी नहीं रख सकते थे चाहे जो भी लाभ रहे हों। जब हमने अंग्रेजी शासन को भारत के लिए स्वीकार नहीं किया तो हमें उसी प्रकार से अंग्रेजी भाषा को भी भारत की शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिए। इस दृष्टि से यह स्वाभाविक है कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही हो सकती है। भाषा केवल एक अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं वह स्वयं ही एक अभिव्यक्ति है।

भाषा के एक–एक शब्द, वाक्य रचना, मुहावरों के पीछे समाज के जीवन का अनुभूतियां, राष्ट्र की घटनाओं का इतिहास छिपा हुआ है। हम अपनी मातृभाषा या राष्ट्रभाषा माध्यम से ही वैश्विक समाज को नवीन ज्ञान, विज्ञान की खोजे दे सकते हैं। अंग्रेजी की नकल से हमारा शैक्षणिक विकास वास्तविक एवं मौलिक रूप में नहीं होगा।

दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति को स्वयं अपना शिक्षक मानते थे। स्वाध्याय के द्वारा व्यक्ति जो कुछ भी सीखता एवं पढ़ता है वह उसके ज्ञान

पटलल पर बना रहता है। उनके अनुसार, ''बिना स्वाध्याय के प्राप्त ज्ञान न तो टिकता है और न ही बढ़ता है।'' दीनदयाल जी शिक्षा के प्रसार प्रचार व स्वाध्याय को बढ़ाने हेतु नगर–नगर, गांव–गांव पुस्तकालय खोलने के पक्षधर थे। वे छात्र और शिक्षक को एक दूसरे का पूरक मानते थे। उन्हें छात्र में शिक्षक का प्रतिबिम्ब दिखता था। एक जागरूक शिक्षक छात्र में शोध की प्रवृत्ति जगाता है। इसी शोध को व्यावहारिक धरातल पर लागू करके छात्र एवं शिक्षक मानवता का कल्याण करते हैं। पंडित दीनदयाल उपाध्याय शिक्षा के साथ–साथ कौशल विकास में भी वृद्धि करना चाहते थे। वे भारतीय युवाओं को व्यावसायिक शिक्षा व्यवस्था एवं उनके कौशल विकास के पक्षधर थे। वे कृषि एवं उद्योग विशेष कर लघु उद्योगों के लिए शिक्षा व्यवस्था को स्थापित करना चाहते थे। कृषि एवं लघु उद्योगों से सम्बन्धित तकनीकों एवं प्रौद्योगिकी का अध्ययन करना उनकी शिक्षा व्यवस्था में प्रमुख स्थान रखते थे। दीनदयाल उपाध्याय गांव के विकास हेतु ऐसी शिक्षा व्यवस्था चाहते थे जिससे सम्पूर्ण गांव का और अन्ततः सम्पूर्ण राष्ट्र का विकास हो सके। उनका मानना था कि पाठ्यचर्या में खेती करना सब्जियां एवं फल उगाना, पशुपालन और मत्स्य पालन के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के शिल्प कर्मों का प्रशिक्षण देना चाहिए।

वास्तव में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शिक्षा सम्बन्धित विचार आज भी अत्यन्त प्रासंगिक हैं। इनके विचार केवल कल्पना मात्र नहीं है अपितु उनके इन विचारों का बहुत व्यावहारिक उपयोग भी है। उपाध्याय जी के विचार– जैसे जन शिक्षा, स्वभाषा, स्वाध्याय, अध्यापन व लोक शिक्षा, कला कौशल का विकास, पाठ्येत्तर क्रियायें का महत्व, शिक्षा का मूल अधिकार, शिक्षा व्यवस्था में एक रूपता, प्राचीन का आधुनिकता के साथ सामंजस्य आदि विषय वर्तमान भौतिकवादी युग में भी अत्यन्त प्रासंगिक हैं। उनका शिक्षा दर्शन इस बात का द्योतक है कि मानव चेतना विश्वव्यापी चेतना के रूप में विकसित हो सकती है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शिक्षा सम्बन्धित विचारों को भारत सरकार ने अपनी नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में जगह दी है।

अतः स्पष्ट है कि दीनदयाल उपाध्याय जी के शिक्षा सम्बन्धित विचारों की प्रासंगिकता वर्तमान के साथ–साथ भविष्य में भी बनी रहेगी और उनके शैक्षणिक विचार न केवल प्रासंगिक अपितु आज के समाज में उनकी महती आवश्यकता भी है।

संदर्भ

1. उपाध्याय, पं0 दीनदयाल. *राष्ट्र चिंतन.* लखनऊ : लोकहित प्रकाशन, संस्कृति भवन, राजेन्द्र नगर, सितम्बर, 2014।
2. भारतीय जन संघ, सिद्धांत और नीति, भारतीय जनसंघ प्रकाशन।
3. पॉलिटिकल डायरी (हिन्दी) : स्वभाषा–खण्ड 4, नईदिल्ली : सुरूचि प्रकाशन, केशवकुंज, झण्डेवाला, नवम्बर 2014।
4. सिंह, अमरजीत. *मैं दीनदयाल उपाध्याय बोल रहा हूँ.* प्रतिभा प्रतिष्ठान, 2017।